P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-6* ISSUE-1* April- 2021
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

संत दादू दयाल की वाणी में दार्शनिकता

Philosophy in The Voice of Saint Dadu Dayal

Paper Submission: 02/04/2021, Date of Acceptance: 14/04/2021, Date of Publication: 20/04/2021

ऋषिपाल
सह प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय, कौल, कैथल, हरियाणा, भारत

सारांश

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके लिए आरम्भ से ही आत्मा और परमात्मा, सृष्टि और जगत, जन्म और मोक्ष, भक्ति और सेवा आदि दार्शनिक चिन्तन के विषय रहे हैं। इन विषयो की जटिलताओं, जिज्ञासाओं, गुत्थियों, रहस्यों को वह आरम्भ से ही सुलझाने का प्रयत्न करता रहा है। किसी विषय को देखने की दृष्टि ही दर्शन कहलाती है।

Human being is a social creature. For him, since the beginning, the soul and the divine, creation and the world, birth and salvation, devotion and service, etc. have been the subject of philosophical thinking. He has been trying to solve the complexities, curiosities, clues, mysteries of these subjects from the very beginning. The sight of seeing a subject to unravel its complexities called philosophy.

मुख्य शब्द : भारतीय दर्शन, अध्यात्म, सन्त, सामाजिक आदर्श।
Indian Philosophy, Spirituality, Saints, Social Ideals.

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन का धर्म से गहरा सम्बन्ध रहा है। इसके साथ भारतीय दर्शन मूलतः अध्यात्मिक रहा है। इस अर्थ में उसे आदर्शवादी कहा जाता है। अपने अध्यात्मिक स्वरूप के कारण भारतीय दर्शनों की चर्चा का मुख्य विषय ब्रह्म और उसका स्वरूप रहा है। भारतीय सन्तों ने इसी ब्रह्म को केन्द्र में रखकर जीव, जगत, माया आदि की स्थिति पर विचार किया है।''[1] अतः उपरोक्त चारों ब्रह्म, जीव, जगत और माया पर विचार करके ही हम संत दादू दयाल की दार्शनिकता को समझ सकते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य संत दादू दयाल की वाणी में दार्शनिकता का अध्ययन करना है।

साहित्यावलोकन

By Bandey October 02, 2020 में 'संत शब्द का अर्थ और परिभाषा' शोध पत्र में कहा है कि ''सामान्यतः 'संत' शब्द का प्रयोग प्रायः बुद्धिमान, पवित्रात्मा, सज्जन, परोपकारी, सदाचारी आदि के लिए प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त, साधु या महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय समझ लिया जाता है। जहां तक 'संत' के शाब्दिक निर्वचन का प्रश्न है उस संदर्भ में संस्कृत के शब्द 'संत' से निर्मित हुआ है और 'सन्' का पुल्लिंग है जो 'त' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – होने वाला। संत दादूदयाल ने भी 'संत' के संदर्भ में कहा है कि संत वो जन होते हैं जो परोपकारी होते हैं और जिनकी आत्मा में परमात्मा देखे जाते हैं –

''पर उपगारी सन्त जन साहिब जी तेरे।
जाती देखी आत्मा, राम कही टेरे।।''

उषा देवी मीणा ने अपने शोध पत्र 'संत दादूदयाल के दार्शनिक विचार' विश्व स्तरीय पत्रिका 'शोध दिशा' शोध अंक 46 सितम्बर 2019 में कहा है कि ''भारत वर्ष में प्राचीन काल से ही परमात्मा, आत्मा, सृष्टि, जगत, जन्म, मोक्ष आदि दार्शनिक चिन्तन के विषय रहे हैं। ये सम्पूर्ण विश्व के लिए रहस्य का विषय रहा है। कोई भी इस रहस्य को नहीं जान पाया। इस ओर प्रयत्न जारी है। विज्ञान भी इस रहस्य को नहीं भेद पाया है। सम्पूर्ण भारतीय वेदांत दर्शन इन्हीं विचारों से युक्त हैं। वेदांत साहित्य को आधार बनाकर विभिन्न दार्शनिकों ने अपने–अपने मतों की स्थापना के द्वारा अपने चिन्तन के माध्यम से इन दार्शनिक विषयों की व्याख्या कर इनके रहस्य को जानने का प्रयास किया है।'' उनके अनुसार – दादूदयाल ने बिना वाद विवाद के पचड़े में पड़े परम्परा से

प्राप्त दार्शनिक विचारों को ग्रहण कर उन्हें ही प्रस्तुत कर दिया है और उनके पक्ष में मौलिक तर्क दिए हैं। अतः उनके दार्शनिक विचार महत्त्वपूर्ण हैं।''

INTERNATIONAL JOURNAL OF INFORMATION MOVEMENT, VOLUME 4, 01 MAY, 2019 में डॉ॰ आर॰पी॰ द्वारा ''संत दादूदयाल ने अपने साहित्य में बाह्याचारों एवं आडम्बरों का पुरजोर विरोध किया है।'' उन्होंने कहा कि ''भूमण्डलीकरण के दौर में मानवता के त्रस्त जीवन में जीवन मूल्यों, मानव मूल्यों एवं आदर्शों की नितान्त आवश्यकता है। जन–जन की नज़रें सन्तों के साहित्य पर टिकती हैं। उन्हें सन्तों की वाणी रूपी अमृत से संतोष एवं तृप्ति मिलती है।''

विश्वस्तरीय शोध–पत्रिका 'शोध–दिशा' शोध अंक–53, जनवरी–मार्च, 2021 में प्रोफेसर डॉ॰ आबा साहेब राठोड़ द्वारा प्रकाशित शोध–पत्र 'भक्तिकालीन संत साहित्य : एक दृष्टिक्षेप' में लिखते हैं कि ''भक्ति में ब्रह्म, जीव, जगत–माया, निर्गुण–सगुण, सर्वात्मावाद, भारतीय अध्यात्म की दार्शनिक भूमि से आते हैं, लेकिन संत का सब में बँट–बँट जाना, अपने अनुभव की सांझेदारी करना। अपने पास जो कुछ है उसे देते रहने का आचरण लोक से आया है।''

विषय विस्तार

सन्तों की ब्रह्म सम्बन्धी मान्यता एवं धारणा उनकी स्वयं की अनुभूति पर आधारित है। सन्तों ने किसी दर्शन या वाद विशेष को महत्त्व नहीं दिया। उनकी दार्शनिक चेतना तो स्वतन्त्र है। ''कबीर के परम तत्त्व या पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति लौकिक शब्द शक्ति की सामर्थ्य से परे है।''[2] समाज साहित्य का दर्पण होता है। कवि अपनी वाणी द्वारा समाज को नई दिशा देता है। डॉ॰ गुलाब राय के शब्दों में, ''समाज कवि एवं लेखकों को बनाता है और लेखक और कवि समाज का निर्माण करते हैं। कवि की बनाई हुई सामाजिक भावों की आदर्श मूर्ति समाज की उन्नायिका बन जाती है।''[3] डॉ॰ दशरथ ओझा ने साहित्य और समाज को व्याख्यायित करते हुए कहा है, ''साहित्य की जो शक्ति चिरन्तर सौन्दर्य से हृदय के तारों को स्पर्श करके भावों को स्पन्दित करती है, वही सामाजिक आदर्शों की स्थापना करके सामाजिक जीवन का निर्माण करती है।''[4] वस्तुतः साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं।

मध्यकालीन समाज में संतों की वाणी का आविर्भाव हुआ। सभी संत निर्गुण ब्रह्म को मानने वाले, निराकार ईश्वर में आस्था रखने वाले, निराकार ईश्वर के उपासक रहे हैं। हिन्दी साहित्य में निर्गुण भक्ति के कवियों को सन्त कवि कहते हैं। सन्त कवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास, गरीबदास, चरणदास व दादूदयाल आदि कवियों के नाम आदर से लिए जाते हैं। लगभग सभी सन्त अनपढ़ थे। संतों ने अपने मध्ययुगीन समाज में अनेकों विद्रूपताओं, विसंगतियों, अनियमितताओं को देखा। तत्कालीन समाज में उन्होंने अन्धविश्वासों, आडम्बरों का घोर विरोध किया। मूर्तिपूजा, पत्थरपूजा, व्रत, दान, तीर्थ स्थान आदि का खण्डन किया। माया का विरोध किया। वे मानते हैं कि सभी प्राणी ईश्वर के ही जीव हैं। सभी में ईश्वर विद्यमान है। सभी सन्तों ने उपरोक्त विषयों पर अपने चिंतन से घोर प्रहार किया। उनकी भाषा जन भाषा थी। अनेक गूढ़ विषयों पर उन्होंने सरल भाषा में अपनी वाणी से सन्देश दिए। सन्तों की वाणी में उनके विचार दार्शनिकों की तरह तर्कसंगत व सटीक, व्यवस्थित या क्रमबद्ध नहीं थे। संत तो मात्र भक्त थे। वे दार्शनिक नहीं थे।

भक्तिकालीन सन्तों में दादूदयाल भी महान संत हुए हैं। उन्होंने अपने जीवन के अनेक अनुभवों से तत्कालीन समाज की विसंगतियों का निराकरण जन भाषा में व्यक्त किया है। इसलिए सभी सन्तों व दादूदयाल के दार्शनिक विचारों का आधार तर्क नहीं बल्कि अनुभव रहा है। दादूदयाल के दार्शनिक विचारों को जनमानस में बहुत अधिक प्रसिद्धि मिली। उनके विचार मौलिक थे। वे निराकार ईश्वर को भगवान मानते थे। उनका ईश्वर सर्वव्यापक है। अगम एवं अगोचर है। उनके मतानुसार ब्रह्म कण–कण में व्याप्त है। वे ब्रह्म को निरंजन और निराकार मानते हैं। संत दादूदयाल मानते थे कि प्रेम के अभाव में शास्त्र एवं ग्रंथों का पढ़ना व्यर्थ है। वास्तविकता तो भक्ति रूपी प्रेम है –

''दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचे कोई।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होई।''[5]

देखा जाए तो बहुत ही विचित्र–सी बात है कि जिन संतों ने अवतारवाद का विरोध किया, उनके शिष्यों ने उनको ही अवतार मान लिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे ''घर जोड़ने की माया'' कहा है।''[6] सन्त कवि दादूदयाल भी मूर्ति पूजा का विरोध करते थे। वे मानते थे कि ईश्वर मनुष्य के शरीर में आत्मा के रूप में विद्यमान है। वे देवी–देवताओं की मूर्तियों को नहीं मानते थे। पूजा–अर्चना करने के लिए मन्दिर आदि में जाकर पत्थर की मूर्तियों के समक्ष नाक रगड़ना उन्हें अच्छा नहीं लगता था –

''झूठे देवा, झूठी सेवा, झूठी केर पसारा।
झूठी पूजा, झूठी पाती, झूठा पूजनहारा।''[7]

दादूदयाल प्रभु की भक्ति के लिए पाखण्डों का घोर विरोध करते थे। वे पूजा आदि के लिए किसी प्रकार की माला, वस्त्र या तिलक आदि को लगाकर या फिर भस्म आदि को शरीर पर लगाकर जो लोग हरि का नाम लेते हैं, उनके अनुसार वे सभी ढोंगी हैं –

''सतगुरू माला मन दिया, पवन सूत सूं पोई।
बिन हाथों निस दिन जपे, परम जाप यूं होय।''[8]

दादूदयाल मानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है। उन्होंने ब्रह्म को निर्मल, प्रकाशमय व तेजयुक्त माना है। ब्रह्म तो उस पानी की तरह है जिसमें जीव अपने पापों को धोकर मुक्त हो जाता है। दादूदयाल लिखते हैं कि –

''ब्रह्म सुनि तहँ ब्रह्म है, निरंजन निराकार,
नूर तेज तहँ जोति है, दादू देखण हार।''[9]

दादूदयाल मुण्डन कराना, जटाएं बढ़ाना, तीर्थ स्थान पर स्नान करना, दान देना व व्रत रखना आदि को भक्ति के लिए पाखण्ड मानते हैं –

''माला तिलक सूं कुछ नहीं काहू सेती काम।
अन्तरि मेरे एक है अहि निसि उसका नाम।।''[10]

दादू दयाल कहते हैं कि लोग तीर्थयात्रा पर जाकर अपने पापों को धोकर पुण्य कमाना चाहते हैं।

लेकिन बहुत से ढोंगी, पाखण्डी व निकृष्ट लोग वहां भी बुरे कर्म करते हैं। दादूदयाल उन लोगों से कहते हैं कि उन पापों, बुरे कर्मों को कहां धोओगे –

''काया कर्म लगाय करि, तीरथ धोवै जाइ।
तीरथ मांहि कीजिए, सो कैसे कहि जाइ।''[11]

दादू दयाल देखते हैं कि लोग अज्ञानता वश अनेक देवी, देवताओं की पूजा करते हैं। ईश्वर एक ही है। लोगों की आस्था नित प्रतिदिन बदलती रहती है। वे भगवान को भी रिश्वत देकर काम निकलवाना चाहते हैं –

''दादू सब थे एक कै, सो एक न जानां।
जणे जणे काहै गया, यह जगत दिवाना।''12

अथवा

एकहि एकें भया अनंद, एकहि एकें आगे दंद।
एकहि एकें एक समान, एकहि एकें पद निर्बान।
एकहि एकें त्रिभुवन सार, एकहि एकें अगम अपार।
एकहि एकें निर्भे होइ, एकहि एकें काल न होइ।''[13]

दादूदयाल ने अपनी वाणी में मनुष्य को एक समान समझते हुए राम रहीम में अन्तर नहीं समझा। डॉ॰ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने ठीक कहा है कि ''उस समय की यही स्पष्ट मांग थी कि हिन्दू और मुसलमान अड़ोसी–पड़ोसी की भान्ति प्रेम और शान्ति से रहें और इन उदार चेत्ताओं को भी इस आवश्यकता का स्पष्ट अनुभव हुआ था। दोनों जातियों के दूरदर्शी विरक्त महात्माओं को जिन्हें जातीय पक्षपात छू नहीं गया था, जिनकी दृष्टि तत्काल के हानि–लाभ, सुख–दुख, हर्ष–विषाद से परे जा सकती थी, इस आवश्यकता का सबसे तीव्र अनुभव हुआ।''[14] दादूदयाल ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हिन्दू अपने धर्म को सही मानते हैं, तो मुसलमान अपने धर्म को सही मानते हैं। दोनों धर्म के ठेकेदारों को वास्तविक ज्ञान नहीं है –

''दादू हिन्दू मारग कहै हमारा, तुरक कहै रह मेरी।
कहां पन्थ है कहो अलख का, तुम तो ऐसी हेरी।।''[15]

अथवा

''दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मूसलमान।।''[16]

दोनों धर्मों तक ही नहीं बल्कि उनके आगे भी अनेक सम्प्रदायों में धर्म के मतभेदों को लेकर हिन्दू व मुसलमान लड़ते हैं। वे अपने को इन झगड़ों से दूर रखते हैं। दादूदयाल तो षड्दर्शन में भी अपनी अनास्था व्यक्त करते हैं –

''दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान।
षड्दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान।''[17]

दादूदयाल मानते हैं कि सामाजिक आदर्श के रूप में व्यक्ति का दायित्व है कि वो जो अपनी वाणी से कहे वही कर्म भी करे। वाणी एवं कर्म का अंतर मनुष्य को दूसरों के सामने मजाक का पात्र बना देता है। केवल बातों से काम नही चलने वाला –

''मनसा के पकवान सों, कयों पेट भरावै।
ज्यों कहिए त्यों कीजिए, तबहि बनि आवै।''[18]

ऐसे लोगों पर समाज विश्वास नहीं करता। वे अपना सम्मान स्वयं नष्ट कर देते हैं। वाणी एवं कर्म से एकरूपता होनी ही चाहिए। दादू दयाल आगे कहते हैं कि –

''दादू कथणी और कुछ, करणी करै कुछ और।
तिन थैं मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर।''[19]

दादू दयाल के मतानुसार प्रायः ऐसे झूठे लोग समाज में तिरस्कृत हो जाते हैं। वे समाज पर बोझ होते हैं। लोग उन पर विश्वास नहीं करते। उनकी वाणी में सभी लोगों को झूठ ही झूठ दिखाई देता है। दादूदयाल कहते हैं कि –

''सोधी नहीं शरीर को, औरों को उपदेश।
दादू अचरज देखिया, ये जांगे किस देश।''[20]

दादू दयाल के मतानुसार भारत देश में विभिन्न धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय, मत–मतान्तरों के लोग रहते हैं। भारत देश में अनेकता में एकता है। जातियों की दृष्टि से भारत एक विचित्र देश है –

''दादूदयाल धुनियां जाति में जन्में थे।''[21]

सन्तों की भक्ति का क्षेत्र सबके लिए खुला था। उनक आदर्श, जीवन मूल्यपरक शिक्षाएं आज भी प्रासंगिक हैं। दादूदयाल मानते हैं कि आचरा की शुद्धता में ही मनुष्य का सहज स्वाभाविक स्वरूप निखरता है। अतः वही मानव का सबसे बड़ा धर्म है। दादूदयाल कहते हैं–

''दादू हिन्दू लागै देहुरे, मुसलमान मसीति।
हम लागे अलेख सौं, सदा निरन्तर प्रीति।।''[22]

मध्ययुगीन समाज में अव्यवस्था एवं अराजकता का बोलबाला था। लोग अनेक संकीर्णताओं में जीवन यापन कर रहे थे। दादूदयाल तत्कालीन समाज से ऊँच–नीच के भेदभाव को मिटाना चाहते थे। उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से जनमानस को समता के धरातल पर लाने का प्रयत्न किया –

''दादू संमि करि देषिए, कुंजर कीट समान।
दादू दुबध्या दूरि करि, तजि आपा अभिमान।''[23]

दादूदयाल अपनी वाणी से समत्व का संदेश देते हैं। वे कहते हैं कि सब जीवों का शरीर पंचतत्त्वों के सम्मिश्रण से बना है, तो मानव मन में भेद कैसा? सभी मानव एक दूसरे को अपना समझकर व्यवहार करें। इससे आत्मीयता और बंधुत्व की भावना सुदृढ़ होगी व सभी प्रकार के भेदभाव दूर होंगे –

''आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल बिचारिए, तो दूजा कौण गंवार।।''[24]

दादूदयाल मानते हैं कि 'सहजावस्था' में आत्मा परमात्मा में मिल जाती है –

''राम रसांयन अमृत माते, अविचल भये नरक नंहि जाते।
राम रसांयन भरि भरि पीवै, सदा सजीवन जुग–जुग जीवै।
राम रसांयन त्रिभुवन सार, राम रसिक सब उतरै पार।
दादू अमली बहुरि न आये, सुख सागर ता मांहि
समाये।।''[25]

दादूदयाल मानते हैं कि 'सहजावस्था' में मानव जीवित अवस्था में शव के समान हो जाता है। जो आदमी अहंकार को मार देता है, वह मर कर भी जीवित रहता है –

''राव रंक सब मरहिंगे, जीवै नाँही कोइ।
सोई कहिये जीवता, जे मरिजीवा होइ।।''[26]

सारांशतः हम कह सकते हैं कि सन्त दादूदयाल की वाणी में दार्शनिकता भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा के अनुकूल है। दादूदयाल का मानना है कि कोई भी

मनुष्य भक्ति को ईश्वर की प्रेम भक्ति से ही पा सकता है। ईश्वर की कृपा सच्चे साधकों को ही प्राप्त होती है। दादूदयाल ने आडम्बर, अन्धविश्वास, ढोंग, पाखण्डों का घोर विरोध किया है। दादूदयाल मानते हैं कि मानव जीवन अनमोल है। सभी प्राणियों में मानव सर्वश्रेष्ठ है। इस अनमोल जीवन में हमें सांसारिक बन्धनों, आकर्षणों मोह, लोभ, लालच आदि विकारों से मुक्ति पाकर ईश्वर के नाम का स्मरण करना चाहिए। उन्होंने मानव जीवन में ईश्वर की भक्ति 'सहज–साधना' करके 'सहजावस्था' की प्राप्ति को प्राप्त करना जीवन का प्रमुख लक्ष्य माना है। ऐसा होने के बाद प्राणी मात्र की आत्मा पवित्र हो जाती है। अहं से छुटकारा मिल जाता है। आत्मा परम तत्त्व का साक्षात्कार कर लेती है। संसरिक आकर्षणों एवं माया के कारण मनुष्य अनेक भ्रमों में फंसा रहता है। इसीलिए आत्मा परमात्मा से मिल नहीं सकती। गुरु के मार्ग दर्शन से भक्त भक्ति के रास्ते पर चलकर संसारिक बन्धनों को तज कर प्रभु की कृपा प्राप्त कर सकता है। ईश्वर ही संसार में सत्य, शाश्वत, सारवान एवं सम्पूर्ण है। बाकी सब संसार एवं संसार की सब वस्तुएँ निस्सार एवं क्षण भंगुर हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ॰ लल्लन राय, तुलसी की साहित्य साधना, पृ॰ 103–104*
2. *अविगत, अकल, अनुपम देख्या, कहतां कहया न जाई। कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 71, पद 6*
3. *डॉ॰ गुलाब राय, काव्य के रूप, पृ॰ 07*
4. *डॉ॰ दशरथ ओझा, समीक्षा शास्त्र, पृ॰ 10*
5. *दादूदयाल की बानी, भाग 1, पृ॰ 41*
6. *'अशोक के फूल' नामक निबंध संग्रह में संग्रहीत निबंध 'घर जोड़ने की माया।'*
7. *दादूदयाल की बानी, पृ॰ 197*
8. *वही, पृ॰ 157*
9. *श्री दादू वाणी, आत्मा राम स्वामी, श्री दादू द्वारा, परिचय को अंग, 4/130, पृ॰ 287*
10. *दादूदयाल की बानी, भाग 1, पृ॰ 155*
11. *वही, पृ॰ 159*
12. *सन्त सुधा सार, खण्ड 01, पृ॰ 481*
13. *दादू दयाल की बानी, भाग 2, पृ॰ 121*
14. *सं॰ पीताम्बर बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ॰ 15*
15. *सन्त सुधा सार, (दादूदयाल) खण्ड 1, पृ॰ 495*
16. *वही, पृ॰ 495*
17. *सं॰ सुधाकर द्विवेदी, स्वामी दादूदयाल की वाणी, 13/50*
18. *सन्त सुधासार, (दादूदयाल), खण्ड 1, पृ॰ 480*
19. *संत वाणी संग्रह, भाग 01, पृ॰ 93*
20. *सं॰ स्वामी मंगल दास, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ॰ 117*
21. *परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ॰ 98*
22. *संत सुधा संग्रह, दोहा 12, पृ॰ 489*
23. *सं॰ परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पद 26, पृ॰ 274*
24. *वही, पृ॰ 272*
25. *श्री दादू वाणी, आत्मा राम स्वामी, राग गौड़ी, पद 60, पृ॰ 82*
26. *वही, जीव मृतक कौ अंग, 23/10, पृ॰ 1009*